International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 2; Issue 1; January 2017; Page No. 51-54

शिक्षा दर्शन एवं भारतीय शिक्षा की चुनौतियाँ

डॉ0 अनन्त कुमार यादव

अध्यक्ष, दर्शन विभाग, इन्स्टीट्यूट ऑफ ऑरियण्टल फिलोसोफी, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन में शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द शिक्ष धातु से उत्पन्न हुई है जिसका अर्थ है 'सीखना ' तथा ज्ञान प्राप्त करना या अध्ययन करना। उल्लेखनीय है कि शिक्षा का समनार्थी एक और शब्द विद्या है जिसका अर्थ जानना होता है। जबकि अंग्रेजी भाषा में शिक्षा को Education कहा जाता है जो लेटिन भाषा के शब्द Educere और Educare से उत्पत्ति मानी जाती है। Educere का अर्थ है 'आन्तरिक का बाहर की और प्रक्षेपण जबकि Educare का अर्थ है to educate यह Teach व Instruct का समानार्थी है। इसी प्रकार अंग्रेजी का Education शब्द E तथा Duco से मिलकर बना है जहाँ पर E का अर्थ Out of और Duco का अर्थ To Extract out। इसलिए Education शब्द का अर्थ आन्तरिक को बाहर लाना है।

ध्यात्वय है कि शिक्षा व्यापक अर्थ में आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने जन्म से मृत्यु तक निरन्तर कुछ न कुछ सीखता और अनुभव करता है। उसके सीखने और अनुभव करने का परिणाम यह होता है कि वह धीरे धीरे अपने भौतिक सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण से सामन्जस्य स्थापित करता है इस सम्बन्ध में टी0 रेमाण्ट का यह कथन उल्लेखनीय है किः– "शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे व्यक्ति अपने को धीरे धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकुल बना लेता है। जीवन ही वास्तव में शिक्षित करता है।

व्यक्ति अपने व्यवसाय, पारिवारिक जीवन, मित्रता, विवाह, पितृत्व, मनोरंजन, यात्रा आदि द्वारा शिक्षित किया जाता है। इसी प्रकार जे0 एस0 मेकेन्जी का कहना है कि व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है और जीवन के प्रायः प्रत्येक अनुभव से उसके भण्डार में वृद्धि होती है।

जबकि सीमित अर्थ में शिक्षा से अभिप्राय शैक्षणिक संस्थानों में दी जाने वाली शिक्षा से है अर्थात् बालक को एक निश्चित योजना के अनुसार एक निश्चित समय तक और निश्चित विधियों से निश्चित प्रकार का ज्ञान दिया जाता है। उसकी शिक्षा कुछ विशेष प्रभावों और कुछ विशेष विषयों तक ही सीमित होती है। इस प्रकार उसको वहीं शिक्षा दी जाती है जिसे समाज के वयस्क उसके जीवन के लिए उपयुक्त समझते है। शिक्षा के इसी सीमित अर्थ को स्पष्ट करते हुए जे0 एस0 मेकेन्जी लिखते है किः– सीमित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय हमारी शक्तियों के विकास और उन्नति के लिए चेतना पूर्वक किए गये किसी भी प्रयास से हो सकता है।

किन्तु समकालीन चिन्तकों का कहना है कि सम्प्रति शिक्षा का वास्तविक अर्थ इन दोनों सीमाओं के बीच में है। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक अर्थ निम्न शब्दों में व्यक्त कर सकते है "शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य के जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक और सामन्जस्यपूर्ण विकास में योग देती है, उसकी वैयक्तिकता का पूर्ण विकास करती है, उसे अपने वातावरण से सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता देती है, उसे जीवन एवं नागरिकता के कर्तव्यों व दायित्वों के लिए तैयार करती है और उसके व्यवहार, विचार व दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो समाज देश व जगत के लिए हितकर होता है।"

प्रश्न उठता है कि शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा दार्शनिकों की विभिन्न धारणाऐं क्या है ? इस सन्दर्भ में कुछ दार्शनिकों का कहना है कि शिक्षा मानव का विकास है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए जॉन ड्यूवी (Dewey) लिखते हैं कि – "शिक्षा व्यक्ति की उन सब शक्तियों का विकास है जिनसे वह अपने वातावरण पर अधिकार प्राप्त कर सकें और अपनी भावी आशाओं को पूरा कर सकें"। वस्तुतः ऐसे व्यक्ति जो अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं की आलोचना कर सकें, समीक्षा कर सके तो वहीं व्यक्ति इस मानव समाज को कुछ योगदान दे सकता है। ऐसा व्यक्ति ही सदैव बदलने वाले समाज से अपना सामन्जस्य स्थापित करने में कठिनाई महसूस नहीं करता। स्पष्ट है कि व्यक्ति के अन्दर यह क्षमता शिक्षा द्वारा ही पहुँचायी जाती है। ग्रीक दार्शनिक प्लेटों ने लिखा है कि शिक्षा छात्र के शरीर और आत्मा में उस सब सौन्दर्य और पूर्णता का विकास करती है जिसके योग्य वह है। जबकि इसी विचार को अरस्तू निम्न शब्दों में व्यक्त करता हैः– "शिक्षा मनुष्य की शक्ति का, विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है जिससे की यह परम सत्य शिव और सुन्दरम् का चिन्तन करने के योग्य बन सके।"

किन्तु कुछ विचारकों का मत है कि शिक्षा प्रशिक्षण का ऐसा कार्य है जिसके द्वारा व्यक्ति को सामाजिक जीवन में अपना उचित स्थान ग्रहण करने के योग्य बनाया जाता है। इनका मानना है कि मनुष्य मूलतः पशु होता है अतः उसे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिससे कि वह अपनी भावनाओं, अभिलाषाओं और व्यवहार पर अधिकार करना सीख जायें। ऐसे प्रशिक्षण के द्वारा ही वह समाज का उत्तरदायी सदस्य बन सकता है। उसे यह प्रशिक्षण शिक्षा द्वारा ही दिया जाता है। इस प्रशिक्षण के बिना वह नैतिक व व्यवस्थित जीवन जीने में कठिनाई का अनुभव कर सकता है। इस प्रकार सच्ची शिक्षा शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं के स्तर पर अच्छे व बुरे के अन्तर को समझने के योग्य बनाती है। इसी प्रकार कुछ विचारक शिक्षा को व्यक्ति के मार्गदर्शक के रूप में देखते है। इनका कहना है कि शिक्षा बच्चों की अविकसित योग्यताओं, क्षमताओं, शक्तियों और रूचियों को इस तरह निर्देशित कर इन्हें दिशा (Direction) प्रदान करती है जिससे वे अधिक से अधिक लाभप्रद बन सकें। किन्तु इस निर्देशन में कुछ सावधानियां भी आवश्यक है जैसे निर्देशन बालक के स्वभाव के विरूद्ध नहीं होना चाहिए, यह निर्देशन व्यक्ति की क्षमताओं, रूचियों एवं योग्यता के अनुरूप होना चाहिए। इसी प्रकार यह केवल भय, डाट व दण्ड के भय पर आधारित नहीं होना चाहिए। जैसा कि फाब्रेल ने ठीक ही कहा है कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की अन्तर्निहित जन्मजात शक्तियां बाहर प्रकट होती है।

जबकि कुछ शिक्षा दार्शनिक शिक्षा को अभिवृद्धि के अर्थ में लेतें है और इस प्रकार इनका कहना है कि शिक्षा अभिवृद्धि है (Education is Growth)। यहाँ अभिवृद्धि का अर्थ शारीरिक और

मानसिक शक्तियों का विस्तार है। वस्तुतः अभिवृद्धि के दो महत्वपूर्ण तत्व है – प्रशिक्षण (Training) एवं वातावरण (environment) और यहीं व्यक्ति में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होते है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रशिक्षण एवं वातावरण के अनुसार क्रिया प्रतिक्रिया करता है जिसके परिणाम स्वरूप वह अपने प्रारम्भिक रूप व स्वभाव से परिवर्तित होकर एक नये स्वरूप में आ जाता है। स्पष्ट है परिवर्तन की ये सब प्रक्रियायें अभिवृद्धि की प्रक्रियायें है और इसलिए इन्हें शिक्षा की प्रक्रियायें कहते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि शिक्षा हमारी शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक ढ़ाचे की अभिवृद्धि है।

प्रश्न उठता है कि अभिवृद्धि कौन कर सकता है ? इस सन्दर्भ में विचारकों का कहना है कि अभिवृद्धि के लिए सबसे सुगम व्यक्ति ये है जो अपरिपक्व या अविकसित होते है। किन्तु एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि हम यह कैसे जान सकते हैं कि व्यक्ति अपरिपक्व या अविकसित है ? इसके उत्तर में दार्शनिकों का कहना है कि अभी ये जानने के लिए कि व्यक्ति अपरिपक्व या अविकसित है, दो मापदण्ड है –

1. निर्भरता (Dependence)
2. लचीलापन (Elasticity)

वस्तुतः प्रत्येक अपरिपक्व व्यक्ति में इन दोनों बातों का पाया जाना आवश्यक है। अपरिपक्व व्यक्ति, परिपक्व व्यक्ति पर निर्भर रहता है क्योंकि उसको जीवन का अनुभव नहीं होता है। इसी प्रकार वह परिपक्व व्यक्ति के अनुभव से कुछ न कुछ सीखने के लिए वह सदैव तैयार रहता है, इसे ही लचीलापन कहते है। ज्ञातव्य है कि व्यक्ति में जितने अधिक समय तक लचीलापन रहता है उसमें ही अधिक परिवर्तन होते है और परिणाम स्वरूप अधिक ज्ञान प्राप्त कर उसका व्यक्तित्व अधिक संतुलित व अधिक संगठित हो सकता है। जैसा कि हम जानते है वयस्क की अपेक्षा बच्चे में अधिक लचीलापन होता है और यह लचीलापन ही उसमें आदतों के निर्माण में सहायता करता है। अतः बच्चे व वयस्क दोनों की अभिवृद्धि के लिए आदतों का निर्माण आवश्यक है किन्तु ये आदते अच्छी होनी चाहिए अर्थात् मूल्य परक या नैतिक विचारों से ओत – प्रोत होनी चाहिए। इन समस्त विवेचनाओं से ध्वनित होता है कि शिक्षा अभिवृद्धि है और यह अभिवृद्धि जीवन के उचित लक्ष्यों, उच्चतम मूल्यों, आंकाक्षाओं व महानताओं की दिशाओं में होनी चाहिए और साथ ही यह सुनिश्चित हो कि यह अभिवृद्धि सन्तुलित सान्जस्यपूर्ण एवं सुसंगठित है। स्पष्ट है कि ऐसी अभिवृद्धि तभी सम्भव है जब व्यक्तित्व के सभी पहलुओंः– शारीरिक, मानसिक, नैतिक, मूल्यपरक, आध्यात्मिक, सौन्दर्यात्मक और सामाजिकता का समान रूप से सम्पूर्ण विकास किया जाये।

ध्यातव्य है कि शिक्षा व शिक्षा दर्शन के सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों के मतों का संक्षिप्त विवेचन करने से इसके स्वरूप की और स्पष्ट अवगति हमें होगी। प्राचीन भारतीय चिन्तन धारा में कहा गया है कि जो हमें मुक्ति दे वही सच्ची शिक्षा है (सा विद्या या विमुक्तये)। जबकि स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि मानव की आन्तरिक पूर्णता का प्रकटीकरण ही शिक्षा है। स्पष्ट है कि यहाँ स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण उनके तत्वमीमांसीय दृष्टिकोण के अनुरूप ही है। इस सन्दर्भ में रविन्द्रनाथ टैगोर का कहना है कि शिक्षा वह है जो बच्चे को इस योग्य बना दे कि वह समझ सकें कि सत्य क्या है और इसकी खोज कैसे की जा सकती है। जबकि ब्राउन का कहना है कि शिक्षा चेतन रूप में एक नियन्त्रित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किये जाते है और व्यक्ति के द्वारा समूह के व्यवहार में। उल्लेखनीय है कि विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) में स्वीकृत किया गया कि "शिक्षा व्यक्ति को दूरदर्शी, साहसी और बुद्धिमान बनाने का साधन है"। जबकि माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952 में शिक्षा को बच्चों के व्यवहारिक जीवन जीने की कला सिखानें की प्रक्रिया माना गया है। इसी प्रकार शिक्षा आयोग 1964 में कहा गया है कि शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। भारत सरकार शिक्षा की चुनौती नीति (1985) में कहा गया है कि "शिक्षा गतिहीन समाज को जीवन्त बनाने की प्रक्रिया है"। ज्ञातव्य है कि डॉ0 राधाकृष्ण के अनुसार शिक्षा मानव तथा समाज का निर्माण करने वाली प्रक्रिया है। स्पष्ट है कि शिक्षा सम्बन्धी इन्हीं विचारों व दार्शनिक मतों के प्रकाश में भारतीय शिक्षा की चुनौतियों को देखने व समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय शिक्षा की चुनौतियां

मनुष्य एक बौद्धिक व विवेकशील प्राणी है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य भी इस प्राणि जगत के सभी प्राणियों की तरह ही एक प्राणी है। किन्तु इसकी विशिष्टता इस बात में है कि यह इस जगत का एक मात्र प्राणी है जो बौद्धिकता व विवेकशीलता से युक्त है। यह और बात है कि विभिन्न मनुष्यों में बौद्धिकता व विवेकशीलता की यह मात्रा न्यून या अधिक होती है। यही कारण है कि भारतीय चिन्तनधारा बुद्धि व विवेक से रहित मनुष्य को पशुवत् कहा है। वस्तुतः मनुष्य में जैसे जैसे बुद्धि व विवेक का स्तर ऊँचा उठता चला जाता है, वैसे वैसे वह मनुष्यों में श्रेष्ठ व अतिमानव/परम चैतन्य का स्वरूप ग्रहण करते हुये भारतीय दर्शन की शब्दावली में सच्चिदानन्द बन बैठता है।

तो प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य में बौद्धिकता व विवेकशीलता को प्रयत्नपूर्वक बढ़ाया जा सकता है ? निश्चय ही भारतीय संस्कृति ही नहीं बल्कि समस्त संस्कृतियाँ इसका सकारात्मक उत्तर देते हुए कहती है कि विधिवत व्यवहारिक, वैज्ञानिक, तकनीकी व मूल्यपरक शिक्षा देकर मनुष्य के व्यक्तित्व में बौद्धिकता व विवेकशीलता का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में शिक्षा की व्यापक भूमिका को सभी संस्कृतियाँ एक स्वर से स्वीकार करती है। उल्लेखनीय है कि सम्प्रति भारत में शिक्षा के प्रसार/व्यापकता और गुणवत्ता को लेकर एक संक्रमण व विभ्रम की स्थिति देखने को मिलती है। इस – प्रकार भारत में वर्तमान शिक्षा के समक्ष कुछ चुनौतियाँ प्रस्तुत होती हैं, जिन्हें व्यापक सन्दर्भ में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

1. शिक्षा के विभिन्न स्तरों के प्रसार व व्यापकता का सन्दर्भ
2. शिक्षा में मूल्यों के अवमूल्यन का संदर्भ

शिक्षा के विभिन्न स्तरों के प्रसार व व्यापकता का सन्दर्भ

शिक्षा मानव विकास का सर्वप्रमुख आधार है। मनुष्य शिक्षित होकर ही समाज एवं देश के विकास में योगदान दे सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रगति की है। परन्तु हम देखते हैं कि भारत का शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम अन्य विकसित देशों की तुलना में कम प्रभावशाली रहा है, इसका कारण मूलतः भारत की सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें हैं। इन समस्याओं ने ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले गरीब छात्रों को अधिक प्रभावित किया हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग पचास प्रतिशत बच्चे प्राथमिक की पढ़ाई के बाद विद्यालय छोड़ देते हैं। इनमें ज्यादातर गरीब ग्रामीण बालिकांए हैं। ग्रामीण गरीब बालिकाएं पारिवारिक दबाव, सामाजिक पिछड़ापन, असुरक्षा, उपेक्षा आदि कारणों से विद्यालय छोड़ देती है, वही बालक गरीबी एवं माता–पिता के शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त साधनहीन, सुविधाहीन एवं गुणवत्ताहीन विद्यालय इन्हें अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ रहे हैं। इसलिए आवश्यकता है कि शिक्षा को सुविधायुक्त, गुणवत्तायुक्त तो बनाया ही जाय साथ ही साथ यह भी होना चाहिए की गरीब, असहाय, दिशाहीन परिवार के बच्चों को शिक्षा के

प्रति रूचि जगाया जाय, जिससे वे उचित एवं प्रभावी शिक्षा प्राप्त कर सके। विद्यालय जाने के लिए प्रेरित करने वाले कारकों की खोज करके उन्हें प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जाय। यदि देश की बुनियादी शिक्षा को सर्वसुलभ एवं गुणवत्ता युक्त बनाया जा सके तो निःसन्देह हम सुनहरे भविष्य की कल्पना कर सकते हैं।

ध्यातव्य है कि वर्तमान समय विज्ञान एवं तकनीकी का है। कोई भी देश विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में जितना अधिक उन्नति कर लेगा वह उतना ही अधिक अपने देश के नागरिकों को सुख – सुविधा प्रदान कर सकता हैं। आज उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध आयामों का विकास हो रहा है। नित नवीन शाखाएं, प्रशाखायें स्थापित की जा रही हैं,नये शोध के क्षेत्र विकसित हो रहे हैं। प्रश्न यह है कि क्या हमारे पास इन नये क्षेत्रों में प्रवेश हेतु प्रवेशार्थी है अथवा क्या सभी प्रेवशार्थियों को हम प्रवेश दे सकते हैं। इन्जीनियरिंग के क्षेत्र को देखते हैं तो आज हमारे पास तीन लाख सीट हैं परन्तु इसमें भी अधिकांश सीटें सूचना प्रौद्योगिकी की हैं, जबकि अन्य क्षेत्रों में जैसे – सिविल, वायो टेक्नोलॉजी, मैटेरियल, वायो मेडिसिन, औद्योगिक इन्जीनियरिंग आदि क्षेत्रों में आवश्यकता से भी कम सीटें उपलब्ध हैं जो कि दुर्भाग्यपूर्ण है। इस – प्रकार देश के लाखों प्रतिभाशाली विद्यार्थी अपनी रूची के अनुसार अध्ययन करने से वंचित हो रहे हैं। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के अनुसार यदि हमें सभी उच्च शिक्षा के प्रवेशार्थियों को प्रवेश देना है तो आज 1500 विश्वविद्यालय तथा 35000 कॉलेज की आवश्यकता होगी, परन्तु हमारे देश में 400 विश्व विद्यालय तथा लगभग 22000 कॉलेज हैं। यदि हम सैम पित्रोदा के अनुसार सोचे तो अभी 1100 विश्वविद्यालय तथा 13000 कॉलेज की स्थापना करनी होगी तभी हम समस्त प्रवेशार्थियों को उच्च शिक्षा में प्रवेश दिला सकते हैं। इस प्रकार उच्च शिक्षा में नामांकन दर जो कि आज मात्र 12.5: है को बढ़ाकर विकसित देशों के बराबर लगभग 40: करनी होगी जो कि बहुत बड़ी चुनौती है। इसके अतिरिक्त हमें शोध के क्षेत्र में भी अवसरों की वृद्धि करनी होगी क्योंकि हमारे देश में प्रति दस लाख उच्च शिक्षा ग्रहण करने वालों में मात्र 156 छात्र ही शोध में प्रवेश लेते हैं जबकि विकसित देशों में प्रति लाख छात्रों में शोध कार्यो मे प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या 4500 है जो कि हमसे बहुत अधिक है। इस – प्रकार स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक निवेश और उचित प्रबन्धन की आवश्यकता है।

उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट करते हैं कि प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा दोनों ही मामलों में भारत दयनीय स्थिति से गुजर रहा है, जबकि एक उभरते हुए महाशक्ति को अपनी शिक्षा व्यवस्था को विश्व – स्तरीय बनाने के लिए हर संभव प्रयास करने होगें। इसके लिए शिक्षण संस्थाओं को मान्यता देने से पूर्व उन्हें उचित मापदण्डों से गुजरना चाहिए तथा शिक्षा के गुणवत्ता के कीमत पर कोई समझौता नहीं होना चाहिए। सरकार को यह भी देखना होगा कि शिक्षा सही दिशा में हो तथा समय – समय पर उनका मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

उच्च शिक्षा, शोध कार्य एवं रोजगार परक शिक्षा आज बहुत महँगी हो गयी है। बहुत से गरीब प्रतिभाशाली छात्र आर्थिक कारणों से इन क्षेत्रां में प्रवेश नहीं ले पा रहे हैं। सरकार गरीब और जरूरत मंद लोगों को शैक्षणिक ऋण उपलब्ध कराने का दावा तो करती है परन्तु गरीब छात्रों को शैक्षणिक ऋण मिलना इतना कठिन है कि वे उनकी जठिल प्रक्रिया से बैंक जाने से कतराते हैं। इसलिए पढ़ाई छोड़ने के अतिरिक्त उनके पास अन्य विकल्प नहीं होता, जो कि बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। अन्ततः देश के ये युवा कुण्ठा और निराशा में प्रवेश कर जाते है तथा कभी कभी तो ये अपराधिक गतिविधियों में लिप्त होकर अपना और अपने देश का भारी नुकसान कर बैठते है। यह स्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। इसे रोकना होगा। इसलिये गरीब और समस्त मन्द छात्रो इसलिए गरीब और जरूरतमंद छात्रों को सरकारी ऋण की सुविधा सरल बनानी होगी एवं शिक्षा के समाप्ति के पश्चात रोजगार पाने तक ऋण की देनदारी के लिए उन्हें परेशान न करने की नीति बनानी होगी। यदि ऐसा हम कर सके तो निःसन्देह शिक्षा के क्षेत्र में क्रांन्तिकारी परिवर्तन संभव हो सकता है तथा अल्पशिक्षित बेरोजगारों की कमी हो सकती है।

भारत की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है। भारत में महिला साक्षरता दर 55 प्रतिशत तथा ग्रामीण महिला साक्षरता 45 प्रतिशत है। इनमें से मात्र एक प्रतिशत महिला उच्च शिक्षा में प्रवेश लेती है। यह किसी भी भाग में अनेक सामाजिक, पारम्परिक एवं सांस्कृतिक बाधाए उत्पन्न होती है महिलाओं की सुरक्षा को लेकर आज भी पारम्परिक परिवार उन्हें बाहर शिक्षा के लिए भेजने से डरते हैं। इसके अतिरिक्त कम उम्र में विवाह परिवार का दायित्व आदि ऐसे कारक है जो महिलाओं को उच्च शिक्षा से वंचित कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को सहयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक वातावरण प्रदान किया जाय तथा इस प्रकार से कानून व्यवस्था का निर्माण हो कि महिलांए शिक्षा के द्वारा अपना देश और देश का भविष्य उज्जवल कर सकें। इसके लिए सामाजिक एवं शैक्षणिक दोनों वातावरण को इस – प्रकार निर्मित करना होगा कि उन्हें पूर्ण प्रतिभा को विकसित करने का अवसर मिल सके।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि पूरी शिक्षा व्यवस्था मूल्यों पर आधृत थी, मनुष्य को मानवोचित गुणों से युक्त करने के लिए शिक्षित किया जाता था। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके उसे आनन्द और शान्ति की और ले जाना था जिसका सामाजिक और सांस्कृतिक परिणाम स्वतः ही सुखदायी सिद्ध हो जाते थे। संयमित भोग के द्वारा भौतिक सुखों को समझ कर आत्मिक उन्नति उनका लक्ष्य था। चार पुरूषार्थ वास्तव में चार मूल्य थे। जन सामान्य के लिए हम तीन पुरूषार्थों का चयन कर सकते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म, अर्थ और काम को यदि हम वर्तमान में मूल्य स्वीकार कर व्यक्ति को शिक्षित कर सके तो स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं। हम कह सकते है कि अर्थ और काम को धर्म अर्थात विवेक से नियोजित कर सके तो ही मनुष्य का भविष्य सुरक्षित रह पाएगा।

भारतीय ऋषियों ने 'काम' और अर्थ को हेय दृष्टि से नहीं देखा वल्कि धर्म से नियोजित काम और अर्थ को पवित्र माना है। उन्होनें ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास किया जिससे मानव सुख आनन्द और शान्ति का जीवन व्यतीत करे। आज स्थिति यह है कि 'कामनाओं' को तथा अर्थ को धर्म के ऊपर स्थापित कर दिया गया है। इसी प्रकार आज की स्थिति यह है कि बुद्धिजीवी वर्ग मूल्यों की अवहेलना में बड़प्पन महसूस कर रहा है। सर्वसम्पन्न व्यक्ति भ्रष्टाचार, देशद्रोह, बेइमानी आदि कृत्यों को खुलेआम कर रहा है। अर्थ लिप्सा और भोग की तृष्णा ने मनुष्य को विवेकहीन/अधर्मी बना दिया है। इसके पीछे कहीं न कहीं हमारी शिक्षा प्रणाली में निहित खामियाँ भी जिम्मेदार है। पश्चिमी देशों ने तो इसका परिणाम देख लिया है। वहाँ न तो परिवार है और न ही मर्यादा, वस्तुतः उन लोगों की निगाहें भारत की और टिकी हैं। परन्तु हम समझ सकते हैं कि हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था को शीघ्र ही मूल्य आधारित बनाने की जरूरत है, अन्यथा हम भी पशुवत जीवन की ओर अग्रसर हो जाएंगे।

कर्तव्यपरायणता, त्याग, सहयोग, सहनशीलता, दया, करूणा, त्याग जैसे मानवोचित गुण यदि हम शिक्षा के द्वारा जीवन के प्रारम्भ से ही व्यक्ति में प्रवेश कराने में सफल हो जाये तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य होने का गौरव हमें पुनः प्राप्त हो सकता है। हम सभी जानते हैं कि आज के समाज में मौका परस्ती, फैशन परस्ती,

दिखावा, स्वार्थपरता, कुटिल व्यवहार, झूठ तथा भोगवादी प्रवृत्ति ने समाज को आश्चर्यजनक रूप से विकृत कर दिया है। आज ईमानदार और चरित्रवान व्यक्ति महामूर्ख और सनकी माना जाता है। हम बुराई और भ्रष्टाचार के साथ जीने के आदी होते जा रहे हैं। यदि ऐसा ही चलता रहा तो हमें इसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी।

हमने देखा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लगभग सभी आयोगों एवं समितियों ने शिक्षा में मूल्यपरक शिक्षा को प्रवेश देने तथा भारतीय संस्कृति के महान आदर्शों को शिक्षा व्यवस्था में क्रियात्मक रूप से सम्मिलित करने का सुझाव दिया है, लेकिन इसका कार्यान्वयन ठीक से नहीं हो सका, जिसका परिणाम हमारे सामने नित्य नवीन अमानवीयकृत्य/चरित्रहीनता के रूप में प्रगट हो रहा है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सम्प्रति भारत में शिक्षा के विभिन्न स्तरों के प्रसार व व्यापकता तथा शिक्षा में मूल्यों का अवमूल्यन व ह्रास – इन दोनों ही बिन्दुओं पर चुनौतीपूर्ण स्थिति दृष्टिगत होती है। एक तरफ जहाँ अनुसूचित जाति, जनजाति, आदिवासी कुछ पिछड़े क्षेत्र, आर्थिक रूप से कमजोर लोगों एवं महिलाओं के बीच शिक्षा का व्यापक प्रसार सम्भव नहीं हो पा रहा है, वहीं दूसरी ओर जो कुछ लोग तथा कथित उच्च शिक्षित होने का दावा करते हैं, किन्तु उनमें मूल्यों/ सद्गुणों/ सवेंदनशीलता / सरलता आदि का भारी अभाव दिखता है। ये दोनों ही स्थितियाँ अत्यन्त ही चुनौतीपूर्ण है। वस्तुतः जनसंख्या नियन्त्रण, संस्थानों की व्यापक वृद्धि व उचित क्षेत्रीय वितरण, सरल शिक्षा ऋण और अत्यधिक शैक्षिक व आधारित संरचनागत निवेश करके प्रथम चुनौती का हम सामना दृढ़ता से कर सकते हैं। इसी – प्रकार इस सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया में मूल्यपरक शिक्षा को सम्मिलित कर उस भयावह स्थिति से निपटा जा सकता है जिससे वर्तमान भारत संक्रमित है। जैसा कि हम जानते है कि आज तथाकथित शिक्षित उच्च पदस्थ लोग मूल्यों व संवेदनशीलता के अभाव में भ्रष्टाचार एवं अन्य संवेदनहीन कृत्य कर आम जनता के राष्ट्रीय संसाधनों/पूँजी व हक को लूट कर हमारे राष्ट्रीय गौरव व राष्ट्रीय चरित्र को काला कर रहे हैं। ये अशिक्षित लोग नहीं है, बल्कि तथाकथित अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ कहे जाते हैं। ऐसा क्यों? वस्तुतः ऐसा इनके अन्दर मूल्यों, संवेदनशीलता व सरलता के अभाव के कारण ही है। जैसा कि जे. कृष्णमूर्ति अपनी पुस्तक " द फर्स्ट एण्ड लास्ट फ्रीडम " में कहते हैं कि " सरलता हममें तभी आती है जब हम स्ववोध के महत्व को समझना शुरू करते हैं। सरलता किसी आदर्श या प्रारूप के साथ समायोजन कर लेना मात्र नहीं है। सरल होने के लिए प्रज्ञा की आवश्यकता होती है।..... सरलता व्यक्ति को अधिकाधिक संवेदनशील बनाती है। एक संवेदनशील मन, एक संवेदनशील हृदय का होना जरूरी है।" निश्चय ही भ्रष्टाचार में डूबे लोग,मूल्यहीन,संवेदनहीन जटिल लोग हैं। अतः शिक्षा को मूल्यपरक बनाने से काफी हद तक इस चुनौती से हम निपट सकते हैं। तभी हेमव्यष्टि व समष्टि/व्यक्तिगत व संस्थागत – दोनों ही स्तरों पर सत्वं शिवं सुन्दरं के औपनिषदीय व प्लेटवी सन्देश को जीवन में चरितार्थ कर उच्च मानवीय संस्कृति का निर्माण कर सकेंगे।